प्रतिव्यक्ति कृषियोग्य भूमिके अनुपातमें भारत अन्योंसे आगे है

विश्वकी वर्तमान स्थितिके परिप्रेक्ष्यमें भारतवर्ष जनाकीर्ण तो है, परन्तु यहाँ जनसंख्याका कोई अतिरेक नहीं हुआ है। आज भारतमें प्रतिहेक्टेयर कृषियोग्य भूमिपर प्रायः यूरोप जितने ही व्यक्ति हैं। चीन एवं जापानमें प्रतिहेक्टेयर कृषियोग्य भूमिपर निर्भर व्यक्तियोंकी संख्या भारतकी अपेक्षा कई गुणा अधिक है। अमरीका, ऑस्ट्रेलिया एवं रूस जैसे अत्यन्त विरल जनसंख्यावाले क्षेत्रोंमें ही प्रतिव्यक्ति कृषियोग्य भूमि भारतसे अधिक बैठती है। भारतभूमि सदासलिला नदियों एवं वर्षभर चमकती धूपसे सम्पन्न है। यहाँ प्रायः सब स्थानोंपर वर्षमें दो शस्य उगाए जा सकते हैं। अतः भारतकी एक हेक्टेयर कृषियोग्य भूमि अन्यत्र किसी भूमिके दो हेक्टेयरके समतुल्य मानी जानी चाहिये। भारतमें समस्त भारतीयोंका सम्यक् भरण करनेके लिये पर्याप्त कृषियोग्य भूमि तो है ही, वस्तुतः यह भूमि समस्त विश्वका भरण करनेके लिये भी पर्याप्त है।

क्षेत्र	प्रतिहेक्टेयर व्यक्ति सन् १९५०	प्रतिहेक्टेयर व्यक्ति सन् १९९०
विश्व	१.९	४.०
एशिया	३.४	७.५
यूरोप	४.४	५.९
अफ्रीका	१.४	३.९
अमरीका	३.४	७.३
भारतवर्ष	२.२	५.५
भारतीय संघ	२.२	५.१
चीन	६.०	१२.२
जपान	२०.५	३०.२
ब्रिटेन	७.६	८.६
फ्रांस	२.३	३.२
इटली	५.२	६.४
संयुक्तराज्य अमरीका	०.८	१.३
सोवियत संघ	०.८	१.३

भारतकी समृद्धिपर विश्व स्तब्ध था

असीम व्यापकता एवं गाम्भीर्यवाली नदियाँ, दुर्लभ उर्वरतासे सम्पन्न विस्तीर्ण भूमि, सदा चमकती धूप, असाधारण बलबुद्धि एवं वैविध्यसे युक्त असंख्य पशु-पक्षी और स्वस्थ स्वत्वसम्पन्न गरिमामय अपार जनसमुदाय – प्राचीनकालसे बाहरके लोग भारतकी ऐसी ही छवि देखते रहे हैं। इसी छविका चित्रण भारत-सम्बन्धी प्रायः समस्त बाह्य वृत्तान्तोंमें मिलता है। भारतीय सभ्यताके स्रोतग्रन्थोंमें यही गुण किसी सभ्यताकी समृद्धिके मूल लक्षण माने गए हैं। भारतमें पहुँचनेवाले विदेशी लोग यहाँकी भूमि, नदियों, धूप, पशु-पक्षियों और लोगोंकी अपार सहज सम्पदा एवं व्यापकताको देखकर सर्वदा स्तब्ध होते रहे हैं।

यूनानी योद्धा सिकन्दरके युद्धवृत्तोंकी भाषा एवं भावमें सिकन्दरके भारतवर्ष की परिधिमें पहुँचते ही अकस्मात् आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखाई देता है। सिकन्दर अपने समयके विश्वकी बड़ी सभ्यताओंके व्यापक क्षेत्रको लाँघकर भारत पहुँचा था। परन्तु उस समयके यूनानी वृत्तोंसे ऐसा प्रतीत होता है मानो वह तबतक किन्हीं जनविरल विस्तारोंसे ही निकलता आया हो। भारतभूमिके निकट पहुँचते ही उसे शौर्यवान् प्रजाओंसे निष्ठापूर्वक संरक्षित अनेक जनसंकुल राज्योंसे अभिमुख होना पड़ता है। और आख्याताकी मनोस्थिति अचानक बदल जाती है। अभीतक अन्योंके प्रति उपेक्षाका अभिमानी भाव रखनेवाला वृत्तकार अब भारत-भूमिकी उर्वरता, यहाँकी नदियोंकी महत्ता, पशु-पक्षियोंकी बलबुद्धि तथा अपार जनसमुदायके असीम शौर्यके प्रति श्रद्धानत-सा हुआ दिखने लगता है।

मेगस्थनीज़, प्लीनी, स्त्राबो और अन्य यूनानी व रोमन लेखकोंके भारत-सम्बन्धी वर्णनोंमें भारतकी सम्पदाके प्रति श्रद्धा एवं भयका यह भाव स्पष्ट झलकता है। विख्यात यूनानी इतिहासविद् हीरोडोटस 'ज्ञात विश्व के सर्वाधिक जनाकीर्ण राष्ट्र' के रूपमें भारतका उल्लेख करता है। यूनानी एवं रोमन वृत्त-कारोंके बहुत पश्चात् चीनी यात्री फाह्यान एवं ह्यूनत्सांग भारत आये। उन दोनोंके यात्रावृत्त भारतभूमि एवं भारतीयोंकी सहज समृद्धि एवं सामाजिक अनुशासनसे अभिभूत दिखाई देते हैं। मध्ययुगीन अरब पर्यवेक्षक और आधुनिककालके प्रारम्भमें आनेवाले यूरोपीय यात्री भी भारतके अपार जनसमूह और असाधारण उर्वरताका वर्णन करते हैं। निस्तेज एवं दरिद्र भारत-भूमि और वैसे ही निस्तेज एवं दरिद्र भारतीय लोगों एवं पशुओंकी छवि औपनिवेशिक शासकों एवं अध्येताओंकी दुष्कल्पना मात्र है।

भारतभूमि एक अभेद्य दुर्ग-सी है

प्रकृतिने भारतभूमिको दुर्लभ उर्वरता एवं अन्य सम्पदाओंसे कृतार्थ तो किया ही है, इस भूमिको किसी अभेद्य दुर्ग जैसी सुरक्षित भौगोलिक संरचनासे मण्डित भी कर दिया है।

हिमालयपर्वतकी उच्च प्राचीर भारतभूमिकी ओर बढ़नेके किसी विदेशी दुःसाहसको सर्वदा प्रतिरोधित करती रही है। उत्तरमें हिमालयके उत्तुङ्ग शिखर हिमाच्छादित रहते हैं, किसी सम्भावित आक्रान्ताके लिये उन्हें लाँघ पानेका प्रश्न ही नहीं उठता। उत्तरपूर्वमें भारी वर्षा होती है, जिससे इस क्षेत्रमें बर्मा व भारतके मध्य पड़नेवाली तीखी पर्वतीय ढलानें व गहरी घाटियाँ सघन जंगलोंसे ढक गयी हैं और इनमें तीक्ष्ण प्रवाहवाली अलंघ्य सरिताएँ बहती हैं। उत्तरपश्चिममें ऊँची पर्वत श्रेणियाँ तो हैं, परन्तु वर्षाकी न्यूनताके कारण सघन वनस्पतिका कवच यहाँ नहीं है। इस दिशामें स्थित कतिपय ऊँचे पर्वतीय मार्गोंसे भारतमें प्रवेश सम्भव है। परन्तु भूमिकी अनुर्वरताके कारण यहाँ जनसंख्या विरल है और इस क्षेत्रसे पार पाना अत्यन्त कठिन है। अतः इस उत्तर-पश्चिमी सीमाकी रक्षा करना अपेक्षाकृत सरल रहा है।

दक्षिणमें भारतभूमि तीन ओरसे समुद्रसे संरक्षित है। भारतके समुद्रतटपर प्राकृतिक पत्तन प्रायः नहीं जैसे हैं। और भारतीय तटसे सहस्रों मील दूरतक और कोई भूखण्ड नहीं पड़ता, दूर-दूरतक गहन समुद्र ही व्याप्त है। इस दिशासे विदेशी आक्रान्ताओंका आना आधुनिक कालतक प्रायः असम्भव रहा है।

अभेद्य हिमालय और अलंघ्य समुद्रने मिलकर भारतभूमिको शेष विश्वसे प्रायः पृथक् ही कर दिया है। भारत अनन्तकालतक अन्योंके लिये अगम्य रहा है। इसीलिये सिकन्दरके साथ आनेवाले यूनानी अध्येता अधिकारपूर्वक यह कह सकते थे कि वे एक ऐसे भूखण्डमें पहुँच गये हैं जहाँ उनसे पहले कदाचित् ही कोई पहुँचा हो। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि भारतवर्ष अन्योंसे कभी विजित नहीं हुआ और अन्योंपर विजय पानेकी कभी कोई आकांक्षा उसने नहीं रखी।

अकल्पनीय प्राकृतिक अभेद्यतासे संरक्षित अपनी विस्तीर्ण एवं उर्वर भूमिपर हम सहस्राब्दियोंतक सुरक्षित एवं समृद्ध जीवनयापन करते रहे और इस प्रकार हमने अपनी असाधारण परिष्कृत सभ्यताका विकास किया। यह सभ्यता अपनी प्राचीनता एवं भव्यतामें अतुलनीय है। भौतिक बाहुल्य एवं आध्यात्मिक गाम्भीर्यमें भारतीय सभ्यताकी असाधारण उपलब्धियोंकी समानता अन्यत्र असम्भव है।

अनन्य भारतीय संस्कृति

भारतकी भौगोलिक अभेद्यतामें भारतीय संस्कृतिकी अनन्यताका रहस्य निहित है। भारतीय चिन्तन एवं भारतीय संस्थानोंका अन्य किसी सभ्यतासे कोई सादृश्य नहीं है। भारतीय चिन्तन एवं संस्थानोंका अपना एक विशिष्ट रूप है, उनका अपना ही एक विशिष्ट भाव है। विदेशोंसे यदाकदा भारतमें पहुँच जानेवाले तत्व भारतीय चिन्तन एवं संस्थानोंके अनुसार रूपान्तरित हो उन्हींमें समाहित होते गये हैं। बाह्य-शक्तियोंने भारतपर राजनैतिक विजय चाहे कभी पायी हो, सभ्यता एवं संस्कृतिके स्तरपर भारत कभी विजित नहीं हुआ।

भारतकी यह विशिष्ट संस्कृति भारतके सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्रके प्रायः समस्त भागोंमें व्याप्त है। सब स्थानोंपर यह विशिष्ट भारतीय संस्कृति स्थानीय एवं देशज विविधताओंसे प्रभावित एवं रूपान्तरित हुई है। ...परन्तु भारतीय उपमहाद्वीपमें उपस्थित किसी प्रकारके कोई भौगोलिक अथवा सामाजिक प्रतिरोध इस सर्वसामान्य मूलभूत संस्कृतिके सब स्थानोंपर व्याप्त होने में बाधा नहीं बन पाये। भारतकी यह मूलभूत संस्कृति अपने भीतर अनेक विविधताएँ समेटे हुए है, तथापि इसकी विशिष्ट भारतीयता सब स्थानों पर स्पष्ट परिलक्षित होती है।

–किंग्सले डेविस, १९५१